मन्वन्तर

श्रीशंभूदयाल सकसेना

बीकानेर
नवयुग-ग्रंथ-कुटीर

१॥)
पहली बार
१९४४

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ-कुटीर
फर्रुखाबाद

मुद्रक
हरप्रसाद वाजपेयी,
कृष्ण प्रेस
२६ हिवेट रोड, प्रयाग।

यह मन्वंतर !

सयोग की बात, यह 'मन्वन्तर' उस समय प्रकाशित होरहा है जब विश्व सचमुच एक मन्वन्तर की झाँकी देख रहा है। महाप्रलय का अकाड ताडव उपस्थित है। प्रतिपल भूडोल आरहे हैं। झञ्झा के झकोरों में क्या विलीन हो जायगा और क्या बाकी बच रहेगा, यह जानने की सामर्थ्य आज किसमें है? शतोर्मियों से लहरा लहरा कर प्रलय के ज्वालामुखी की सर्वग्रासिनी लपटें सर्वस्व को आत्मसात् करने के लिए चली आ रही हैं। उनका आज घर-घर में स्वागत हो रहा है। देशों के प्रागण उनके लिए उन्मुक्त पडे हैं। युवकों के वक्षस्थल उनके आलिगन को तडप रहे हैं। वे खुशी से आयें और अपने साथ विनाश का वरदान लेती आयें। महानाश के इसी बीज से नूतन सृष्टि के मगलमय अकुर फूटेंगे। प्रलय की इस कालरात्रि के बाद, ओस की बूँदों से गुँथी प्रकाश रश्मियों की माला गले में धारण करके, प्रकृति रानी नवयुग का पहला उत्सव मनायेंगी।

साहित्य जीवन का प्रतिफलन है। जीवन के द्वार पर जो म वन्तर उपस्थित है वह साहित्य के मदिर मे भी प्रवेश करेगा। वह बाहर कैसे रह सकता है? वास्तव मे युग की यही आवश्यकता है—जीवन का यही परम सत्य है। इसे कविता के क्षणों में अमर न करने वाला कवि जीवन और युग की ओर से विमुख रहेगा। उसकी कला म्यूज़ियम की वस्तु होकर सुरक्षित रखने योग्य हो सकती है, पर जगत के साथ पग मिलाकर चलने के सामर्थ्य का उसमें अभाव है।

मन्वन्तर के इसी सर्वसंहारकारी रूप का स्वागत करने के लिए विश्व कवि की आत्मा उन्मुख हो रही है। यह इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई वांछनीय वस्तु है, वह कोई क्रीडा की सामग्री है, वरन् इसलिए कि उसके पश्चात् नवसृजन की सूचना है। उस नव्य सृष्टि की पूर्व सूचना ने कवि के अन्तराल में आकुलता का महोदधि तरंगित कर दिया है। उन तरंगों पर झूलता हुआ वह उस अभिनव दृश्य की कल्पना कर रहा है। वह कल्पना परम मंगल की आकांक्षा से ओतप्रोत है।

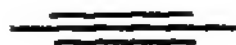
आज धर्म जाति और राष्ट्रीयता के वर्म को छेदकर साहित्य की प्रवृत्ति ने मानवता के कुसुम कोमल शरीर का स्पर्श पा लिया है। अब तक कवि और काव्य जिस दुनियाँ में सत्य की खोज कर रहे थे वह वैभव के आलोक से पूर्ण होकर भी बहुत छोटी थी—संकीर्ण थी। उसके बाहर एक विशाल जगत् का अनुसंधान करके आज कवि की वीणा में छन्द पागल होकर बज रहे हैं। सहज मानव के चरणों में, जिसे कुलीनता, जातीयता, राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता, धार्मिकता आदि के दंभ ने कलुषित नहीं किया है, समर्पित होकर आज का काव्य अपने को कृतकृत्य मानता है। आलोक की ऐसी ही प्रकाशरेखा मन्वंतर के अन्तर से झाँक रही है। केवल कवि ही उसे देख पा रहा है। वह तो नई उद्भावनाओं और नई धारणाओं का अग्रदूत है। इसलिए आओ, सब मिलकर मन्वंतर के इस महापर्व का अभिनंदन करें।

कौन जाने मन्वंतर के अनुवर्ती इस 'मन्वंतर' में भी कोई अनुरूप प्रकाश हो? हो तो, मेरा प्रयास व्यर्थ न हो सकेगा।

वसंत पंचमी
संवत् २००० वि०

शंभूदयाल सक्सेना

सूची



विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी
की
स्मृति मे

मन्वन्तर

मन्वन्तर

अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

ऋक्, साम, यजुष् की वाणी से,
स्मृति-दर्शन वीणापाणि' इ से,
गौरी, सोमा, कल्याणी से,

देवाधिदेव के चरणों में ले पहला अर्घ्य प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

त्रिष्टुप, गायत्री, गाथाएँ,
नव नव छदो की भाषाएँ,
सहिता और वे शाखाएँ,

रच रचकर मधुर अर्चना का मधुपर्क नया निर्माण किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

ऋषियो की वाणी से बरसा,
सविता के मत्रों मे दरसा,
द्यौ, त्वष्ट्रा, मरुता ने परसा,

उस अमर भाव चिर चिर नवीन से कृतयुग-रूप विधान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अनुपम सस्कृति को प्राण दिया।

सत् असत् कहाँ थे कौन कहे ?
रज औ' विराट् जब गौण रहे।
दिन-रात-युग्म भी मौन रहे।

उस आदि काल के परम स्रोत में हमने मज्जन-स्नान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

इस जन्म मरण के आरपार,
वह वेध रहा है कौन तार ?
वह शुद्ध बुद्ध है या विकार ?

इस आत्म तत्व के विमल सत्य का चिर सुन्दर संधान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

युग युग की मोह-निशा टूटी,
भूपर जन ज्ञान गिरा फूटी,
अज्ञान - ग्रहण - छाया छूटी,

आलोक किरण तूली लेकर नव छायापथ निर्माण किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

मासों, अब्दों, युग, कल्पों में,
इतिहास, पुराणों, गल्पों में,
कुश-काँटों, कोमल तल्पों में,

सर्वत्र हर्ष नव पौरुष से अभिशापों को वरदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

जो उधर मोहंजो दड़ा पड़ा,
पास ही हड़प्पा स्वर्ण जड़ा,
चिर गौरव विंध्य महान खड़ा,

सब मे अपना वैभव बिखरा युग युग ने जिसका गान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

अभिलेख शिलाओ में उभरे,
अणु-अणु कण-कण हो उठे हरे,
जड़ जागृत चेतन हो पसरे,

प्राणो की चिनगी से छूकर शाश्वत जीवन का दान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

रच-रच पुराण इतिहास अमर,
विज्ञान ज्ञान का दीपक धर,
अज्ञान विवर उद्भासित कर,

मानव को मानव के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

मोहक अरण्य आश्रम ललाम,
एकान्त तपोवन पुण्य धाम,
ध्यानस्थ व्यास से ऋषि अकाम,

जल थल मे सम स्वर्ण पावन अग-जग का नित कल्याण किया।
अपने मनवन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

वे उपद्वती सी सरिताएँ,
गंगा यमुना दायें-बाँयें,
सब निजानंद में लहरायें,

उनके पावन उपकूलों पर हमने शुभ यज्ञ विधान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

कुश-कंटक, सघन अरण्य रहे,
श्वापद प्रवाह निर्बाध बहे,
उन कठिन दिनों की कौन कहे?

हल-हँसिया ले हो कृषक प्रथम हमने कृषिकर्म प्रमाण किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

हल की नोकों के लेख अमर,
हैं लिखे हुए विस्तृत भू पर,
पग पग नन्दन कानन सुन्दर,

मिट्टी से अन्न, वस्त्र, फल, फूलों का हमने वरदान लिया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

तृण-तृण, कण-कण सश्रम चुनकर,
साहस खोद गिरिपथ ऊसर,
जीवन गृह नव्य भव्य रचकर,

इन उभय करों के कौशल ने नवयुग का पथ संधान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

ईंटें, चूना, मिट्टी, पत्थर,
ले ले वसुधा पर दुर्ग-नगर,
रच दिये सौध, मन्दिर सुन्दर,

भारकर्य शिल्प सी दिव्य कला को हमने नव उत्थान दिया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

कर दिये यहाँ साम्राज्य खड़े,
वे प्रजातन्त्र, गणराज्य बड़े,
जिनके खँडहर लो, अभी पड़े!

शासन, सत्ता, अधिकार, स्वत्व का बहु बहु विधि व्याख्यान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण दिया।

अमिताभ यहीं चलकर आये,
करुणा ने सजल गान गाये,
श्रद्धा में सागर लहराये,

सब मोह-पथ खुल गये जीर्ण जीवन ने नया उफान लिया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

हो उठे मुखर स्वर-ग्राम मौन,
लेखनी चपल, तूलिका पौन,
पी छके शिल्प सब अमृत कौन?

घर-घर पग पग उस दिव्य सृष्टि का रम्य रुचिर परिधान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

सब चलो अजन्ता मे चलकर ,
देखें भारत की कला अमर ,
चित्रित पर्वत की भीतो पर ,

किसके हाथो से रग भरे, किसने वह रूप विधान किया ?
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

मदिर पर्वत मे गढ काढे ,
व मौन इलोरा मे ठाढे ,
जन अर्णव दर्शन को बाढ ,

सब थकित चकित वह दृश्य देख कैसा कौशल निर्माण किया !
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

मथुरा, काशी, तमलुक, तिरहुत,
उज्जयिनी, नालदा, भरहुत ,
राजगृह, तक्षशिला, विश्रुत ,

हैं डगर डगर स्मारक अपने, कितने किसने अनुमान किया !
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

रच इन्द्रप्रस्थ, काची, प्रयाग ,
विदिशा, अवन्ति का भूमि-भाग,
श्रावस्ती का सुरभित पराग ,

किस महाभाग के अमर स्पर्श ने वह अमरत्व प्रदान किया ?
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

फिर फिर देखें चल सारनाथ,
खँडहर कहते वह स्वर्ण गाथ,
वह जहाँ सुगत का अमृत पाथ,

कर गया धन्य पावन भू को, चिर दुखियों को निर्वाण दिया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

साँची का तोरणद्वार खड़ा,
वैशाली का इतिहास पड़ा,
कोशांबी का जयकेतु गड़ा,

किसकी दृढ़ इच्छा ने इनको निर्माण सुयोग प्रदान किया?
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

वह मगध अमर जिसकी काया,
वह राजछत्र जिसकी छाया,
लेकर अशोक-सा नृप आया,

धर्मामृत वसुधा पर बरसा, देवों ने जय जय गान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

लंका के उस दिन भाग खिले,
भिक्षुक महेन्द्र जब उसे मिले,
गृह त्यागी, धर्म पथिक पहिले,

अंबर तक बुद्ध-गिरा गूँजी, जड़-चेतन ने मधुपान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने, अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

जावा से चाम्पा तक घर घर,
चल फैल गई सभ्यता सुकर,
वे तरुण अरुण मानव के कर,

अनगढ़ चम्पा को सौम्य शिल्प का, नव संस्कार प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

गुप्तों, लिच्छिवियों, नागों ने,
काश्मीर, सिन्धु भू-भागों ने,
ग्रामों ने, बाग-तड़ागों ने,

अपनी अपनी अंजलि देकर, पूजा का अर्घ्य प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

शक, कुशान, हूणदल बसा रहे,
निज निज कृत्यों को जता रहे,
इतना तो सबको पता रहे—

आर्यों-द्रविड़ों ने यज्ञ रचा, हमने पूर्णाहुति दान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

सब के प्राणों की खाद यहाँ,
सब को रुचता वह स्वाद यहाँ,
सदियों का शुभ संवाद यहाँ,

अगणित हाथों से गढ़ी राष्ट्र प्रतिमा को रूप प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

ईरानी, यूनानी, पठान ,
तुर्की, अरबी, मगोल-खान ,
गजनी, काबुल औ' इसफहान ,

भारत-वेदी पर मिल बैठे, नव दृष्टिकोण सधान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

हमने कबीर, अकबर पाये ;
तुलसी, प्रताप, शकर जाये,
जायसी, सूर, टोडर आये ,

मानवता के वे सुफल अमर, जग ने जिनका गुणगान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

है यही कुतुब मीनार खड़ी ,
जग वद्य ताज की नींव पडी ;
दिल्ली की किल्ली यहीं गडी ;

चित्तौड़ दुर्ग के कीर्ति-स्तभ को, किसने गुरुतर मान दिया,
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया॥

घर दर मस्जिद-मदिर सुन्दर ,
पग पग किसान-श्रमिकों के घर,
हिन्दू-तुर्कों से भरे नगर,

यह नही व्यष्टि का विश्व-सृजन, गौरव समष्टि ने दान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने, अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

यह नर-नारी सब की समृद्धि,
यह आर्य-शूद्र सबकी प्रसिद्धि,
हिन्दू-मुस्लिम की ऋद्धि-सिद्धि,

अक्षय कुबेर-निधि-सचय का, युग-युग से यह वरदान लिया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

युग युग का यह मदिर विशाल,
चूडा छूती गिरि-शृ ग-भाल,
आधार धरा पर, जड पताल,

अकित अलिन्द में कोटि भाल, प्रभु चरणों का चिर ध्यान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

केशर, चदन, रोली, अक्षत,
बहु धूप दीप, घृत, पचामृत,
गंगाजल, बूँद-बूँद नि सृत,

सार्थक श्रद्धा के चरणो में जो पत्र-पुष्प-फल दान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

इन हाथों ने सौंदर्य रचा,
इन हाथों ने सौकर्य रचा,
इन हाथों ने नव पथ विरचा,

इन हाथो ने छूकर मिट्टी को जीवन का वरदान दिया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

हो गया पवित्र अशुच छूकर,
पौरुष से स्वर्ग बना भू पर,
नंदन सा फूल रहा ऊसर,

इस नव मानवता क विकाश ने भव्य युगान्तर गान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति का प्राण दिया।

मुस्लिम आत्मा, हिन्दू शरीर,
कह रहा ताज यह हृदय चीर,
हो गया एक मिल नीर-क्षीर,

यों अमर कला के प्रागण मे हमने नव स्वर्ण विहान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

मानव-सस्कृति का रूप परम,
मचित कर आत्मा का शम-दम,
छू दिया किरण ने घूर्णित तम,

खिल उठा अवनि का रोम-रोम सात्विक पथ अनुसधान किया।
अपने मन्वन्तर मे हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया।

ब्राह्मण से

ओ ब्राह्मण, ओ वेदज्ञ, ब्रह्म,
ओ अखिल सृष्टि के आदि ज्ञान !
ओ महिमा के उत्तुंग शृंग,
ओ तेजपुंज, गौरव निधान !

ओ तप पूत, त्यागी, योगी,
स्वाध्याय निरत, भूसुर महान !
ओ आत्मनिष्ठ, आचार मूर्ति,
ओ संयम के निष्ठुर विधान !

ओ साधक, आराधक, याजक,
ओ शास्त्रकार, चिन्तन धुरीण !
ओ गौरवर्ण, उन्नत ललाट,
ओ अग्निशिखा लोहित नवीन !

शुचि, शांत, सौम्य ओ पूज्यचरण,
ओ पुण्यात्मा, ओ विगतराग !
ओ तीर्थ सलिल, ओ शुद्धबुद्ध,
ओ निर्विकार, ओ महाभाग !

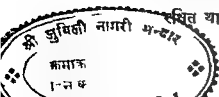
तुम मानव जग में देवसृष्टि,
तुम वसुधा में साकार स्वर्ग।
तुमसे भव भव में धन्य हुए
सब नर-नारायण वर्ण-वर्ग।

संस्कृति-मंदिर निर्माण किया
कर नव मानवता का प्रसार।
जीवन वाहक बन गये रोक
पाशव प्रवृत्ति मैथुनाहार।

भव-मानव ने कर दिया तुम्हें
अर्पित श्रद्धा विश्वास मौन।
चरणों में कितना चढ़ा दिया
युग-युग ने गौरव कहे कौन?

सब भुक्ति-मुक्ति अनुगमन तुम्हारा
करने को हो उठी व्यग्र।
चिन्तन-दर्शन के अग्रदूत
तुम से जग की महिमा समग्र।

गौरव के गौरीशंकर पर
चढ़कर तुम जब तक निरभिमान
रह सके, अटल भू अंबर में
चर्चित था तव यश-स्वर्णमान।



है याद नहीं वह किसे तुम्हारा
ब्रह्मतेज-सा महा शस्त्र ?
वज्री, प्रलयंकर शंकर भी
होते जिसके सम्मुख निरस्त्र।

वह तपस्तेज, वह नमित ओज,
दृप्त-स्फुलिंग, वह वह्निजाल।
है कहाँ आज हे विप्रवर्य !
वह ज्योति मन्दकर महाकाल ?

तुम उठे; उठे उठकर तुमने
छू लिया हिमाचल का ललाट।
तुम बढ़े, बढ़े बढ़कर तुमने
पा लिया विराटों का विराट्।

कुछ पाने को रह गया नहीं
तुमको भावी गत, वर्तमान।
चरणों में सौ सौ बार अर्घ्य
हो चुका तुम्हारे विधि विधान।

हे ज्ञानवृद्ध, पर कहाँ तुम्हारा
आज अतुल आदर्श रूप ?
आवास स्वयं ही बना लिया
क्यों रूढ़िग्रस्त भव अन्धकूप ?

सस्कृत वाचा मन कर्म भाव
की कहाँ समुज्ज्वल ज्योति रम्य ?
पग पग विगलित हो रही आह !
वह रीति नीति जग-जन प्रणम्य ।

जब तक तुम अपने को अपूर्ण
कह बढते जाते थे सतर्क,
आचार विचारो मे गति थी
पथ निर्देशक थे सोम अर्क ।

वह दुर्घटना थी एक घडी,
जब हुआ तुम्हारा दृष्टिरोध ।
तुमने नगण्य जग को माना
थे सर्वोपरि तुम निर्विरोध ।

यह अहभाव ही एक तुम्हारा
तुम्हे अतल की ओर खींच
ले गया, 'पतन की ओर बढे
जा रहे तभी से आँख मींच ।

उत्कर्ष—सतत उत्कर्ष तुम्हें
पग पग युग युग था सहज प्राप्त।
जो कुछ वाणी से निकल गया
हो गया वही ,वेदोक्त, आप्त ।

पदभ्रष्ट हुए जय से परन्तु
होगये शून्य सब मन तन।
हे बुद्धिप्राण ! निस्तेज मौन
हो पड़ा तुम्हारा ज्ञान-यत्न।

शापित निर्वापित सा सम्प्रति
वह पंकलिप्त हो रहा गात,
जो चंदन से चर्चित अर्चित
पूजित वंदित था साध्यप्रात।

है रोम रोम से उमड़ पड़ा
जड़ मोह तुम्हारे आसपास।
तुम धन वैभव से चिपट रहे
अधिकारों के प्रति चिर उदास!

निर्लिप्त भाव अब नहीं रहा
जिससे सुदीप्त था दिव्य भाल।
है कहाँ तुम्हारा त्यागनिष्ठ!
वह सेवा-मंडित अंतराल!

जिसके चरणों की रज-पाकर,
हो जाते थे नरपति निहाल।
जिसकी निष्ठा का तप्त सूर्य
तपता था पृथ्वीतल, पताल।

तुम कीड़ों से रेंगते आज
होकर वैभव के क्रीतदास।
तुम त्यागी से भिक्षुक बनकर
दर दर पसारते कर हताश।

हो अतुल ऐषणाओं के पुतले
खो बैठे तुम सार तत्व,
उस आदि सृष्टि का एक मात्र
प्रिय मूल सत्य था जो समत्व।

क्या आज शूद्र से भिन्न तुम्हारी
सत्ता है हे विश्वप्राण!
ये शिखा-सूत्र ही शेष, व्यर्थ
तुम फूँक रहे गौरव विषाण।

तुम अंधकार की अतल गुहा, अब
तुम प्रकाश का नाम शेष।
तुम ज्ञान कर्म-हत, धर्म-च्युत
युग युग की जड़ता के निवेश।

तुम जीर्ण लेश गौरव गिरि के,
तुम ध्वंस, ह्रास, मोहान्धकार।
तुम गलित सनातन की छाया
आकंठ-मग्न तुम कदाचार।

तुम वसुन्धरा का भार बने
अभिशापरूप ओ निष्कलंक!
ओ नियति नियामक! क्यों सारे
मिट गये तुम्हारे भाग्य अंक?

क्या ला सकते हो नहीं पुन
तुम अपना वह खोया अतीत?
क्या गा सकते हो नहीं त्याग तप
संयम का वह मधुर गीत?

तुम जगो जगो फिर से जगकर
उस नित्य सत्य की करो खोज।
फिर एक बार देखे जगती
महर्षि, तुम्हारा स्तिमित ओज।



अजन्ता की कला

कब लोकदृष्टि से दूर विजन
गिरि-अचल में यह अनुपम धन,
मानव आत्मा का पुण्य परम,
रच गये यहाँ चुनचुन कनकन ?
स्वर्गीय विचारो की छाया
माया निमित ये कलाभवन !
नयनों को मन को लुभा रही
कुत्सा भी यहाँ सुन्दरी बन,
छन छन यथार्थ आदर्श सुकर
हो गये यहाँ पावन नूतन।
कितने जीवन मन प्राणों में
कर रहे सतत मधुरस वर्षण।
ये लोकदृष्टि से दूर विजन
गिरि अचल मे सो रहे मौन
माया-मन्दिर शुचि कलाभवन !

युग युग की महिमा का प्रसाद ,
युग युग के जीवन का विषाद ,
इनकी रेखाओं मे रजित
अभिराम क्षणो का सुसंवाद !

ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता के
छवि की सीमा ये निर्विवाद।
'ये चित्र शिल्प का एक कल्प'—
जग में यह विश्रुत है प्रवाद।
हो गये मूर्त चिर स्वप्न यहाँ
वपुमान कल्पना पर खराद
दे दे, गढ दी स्मृतियाँ अनेक
आकृतियों में भर मदिर स्वाद।
युगयुग की महिमा का प्रसाद,
ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता के
छवि की सीमा,ये निर्विवाद!

धूप छाँह छू मंजु समीरण
बहता जो जीवन की, अनुक्षन
उसे हेम-नीलम के जल में
घोल घोल नव रूप किरण कण
कलाकार ने ले कूँची में
किया रम्य निर्माण सुरोचन।
हुई अलकृत धरा पहिन युग
युग के भाव विभाव विभूषण।
विश्व ताप से तप्त दृगों में
लगा रहा जग शीतल अंजन।
रूप सृष्टि के इन चरणों में
अर्पित तन, मन, जीवन, यौवन।
धूप-छाँह छू मंजु समीरण

वहता, ले जीवन शिल्पी ने
किया रम्य निर्माण सुरोचन।

हुई रूप की इच्छा जागृत,
छलक पडा उर से भावामृत,
आर्द्र हो गये पट प्राचीरें,
शैल हो गये धन्य, समादृत।
नव नव रगो मे स्वरूप नव,
नव आलेख, प्राण नव चित्रित—
सध्या, उषा, अहर्निश, उडु-शशि,
अबर-सागर, दिशि-पल शतशत,
खग-मृग, जीव-जतु, नर-किन्नर,
तृण, वीरुध, तरु, हिमनग अभिमत
राजा, रक, रूपसी तरुणी
सहज स्निग्ध सुषमा से पुलकित।
हुई रूप की इच्छा जागृत
शाश्वत जीवन को सुरभित कर
छलक पडा उर से भावामृत।

कण-कण रच जीवन का अंकन
किया पूर्ण, सर्वा ग सुशोभन।
आज अजन्ता की भीतों से
लिपटा युग युग का मानव मन।
हास विलास, अश्रु सिसकी सब
कहते निज आख्यान सनातन।

बोल रही आत्मा रगो म
चित्र मुखर, रेखाएँ उन्मन।
स्वर्ण, रजत, नीलाभ, कृष्ण ऋजु
वक्र भगिमाओ का दर्शन,
सहज मूर्ति मानव सस्कृति की
कर देता साकार पुरातन।
कन कन रच, जीवन का अकन
किया पूर्णतम, लिपटा जिससे
युग युग का आकुल मानव मन।

अज्ञात नाम वे शिल्पकार,
अज्ञात शील-कुल कलाकार,
है चढ़ा रहा ससार अर्घ्य
वे वदनीय हैं द्वार द्वार।
कर गये तूलिका अमर, अमर
उनकी टाँकी का वार वार।
कदरा क्रोड मे राशि राशि
सौंदर्य !—एक स्पर्धा अपार !
रेखा मे इतना रम्य रूप,
रगों का यह मोहक प्रसार !
कल्पना स्तब्ध, कुठित-वाणी,
भावना मूक, निश्चल विचार !
अज्ञात नाम वे शिल्पकार
कर गये तूलिका अमर, अमर
उनकी टाँकी का वार-वार !

सती

ओ सतवती, वह सत्य कौन
जिसके पीछे तुम चितारूढ़?
श्रुति, स्मृति, दर्शन सब जहाँ मौन
मिल गया कौन-सा तत्त्व गूढ़?

जीवित भी मृत को ले सहास
तुम अनलशिखा से रही भेंट,
लिख दिये विधाता ने सुलेख
तुम जो मस्तक से रही मेट!

क्या इस जीवन का यही मूल्य
ज्वालाओं का यह बने ग्रास?
यह कंचन-सा सुन्दर शरीर
पल में यों होने को विनाश!

उस सप्तपदी के स्निग्ध प्रेम
का अन्त, आह, इतना कराल!
किसने सोचा था स्नेह-कुंज
में दावा का यह विषम ज्वाल!

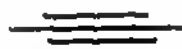
वह दुष्ट-मरणा, उसे शाप,
तुमने भी अपना कहा धर्म,
सहगमन मान बैठीं समोद
नारी ! यह निश्चित पाप कर्म।

यह विधि-विधान का भारखण्ड
इसको कब भाये पिक-मराल ?
इसमें कुश काँटों का अबाध
शासन चलता है सर्वकाल।

फूलों का शूलों से विनाश,
शैशव पर पत्थर का प्रहार—
वे कौन वेद, वे कौन शास्त्र,
कहते इसको जो धर्म-द्वार ?

प्रिय की वह स्मृति कितनी पवित्र,
कितना अनूप वह दग्ध प्यार,
नन्दन हो सकता विश्व-सद्म
ढोकर उसका अविराम भार।

ओ मृत्युसंगिनी, एक बार
ठहरो, क्षणभर देखो विचार,
वह नित्य सत्य है लिये कौन—
यह चिताभस्म या मधुर प्यार ?



जीवन-डग

बढते जाते, बढते जाते,
ये जीवन-डग बढते जाते।
थकते न कभी, रुकते न कभी,
झुकते न कभी, बढते जाते।
ये जीवन-डग बढते जाते।

अब्दो, सदियो, युग, कल्पो मे
ये बार बार ढलते जाते।
ये जल थल नभ का भेद छोड
बस, एक चाल चलते जाते।
उत्थान-पतन गिरि-गर्त्तो मे
ये चढते औ' कढ़ते जाते।
ये जीवन-डग बढते जाते।

ये राष्ट्रो मे उगते जाते,
सस्कृतियो म जमते जाते,
साम्राज्यो मे ये फैल-फैल कर
सुदृढमूल बनते जाते।

ये ज्ञानों में, विज्ञानो में
नित नये नये तनते जाते।
फिर दर्शन के झीने पट में
त्रसरेणुरूप छनते जाते।
ये जीवन-डग, ये जीवन-डग,
ये यष्टि-सुदृढ, दुर्बल डगमग,
इनके नाना रूपों से जग।

इनको वसंत से मोह नहीं,
इनको पतझड से द्रोह नहीं,
फूलो की इन्हें नहीं ममता,
मन नहीं कहीं इनका थमता।
ये तो अशिथिल अश्रान्त पथिक
निश्चित पथ पर बढते जाते।
ये जीवन-डग बढते जाते।

ये शैशव मे करते क्रीडा,
यौवन में इनकी श्री व्रीडा,
ये जरा-सुरा के मतवाले
इनका सन राग रग भाते।
खँडहर में ये जनपद रचते
जनपद अरण्य ये कर जाते।
ये जीवन-डग—सर्वांग सुभग,
बढते जाते, कढते जाते।

ये नित्य नया, अभिनव, अनुपम
ले नये छन्द रचते जाते।
ये नये गन्ध, नव तुक, वाणी
नव, नये द्वन्द सजते जाते।
ये डगर-डगर, ये नगर-नगर,
ये देश-देश रमते जाते।
ये जीवन-डग गमते जाते।

कृमि-कीट कभी, गज-ग्राह कभी,
तृण-वीरुध, उदधि, अथाह कभी,
ये पगडंडी की राह कभी
प्राणों का घट ढरते जाते।
ये जीवन-डग बढ़ते जाते।

मानव है जिसमें एक बूँद,
अबुधि अथाह भरते जाते।
संस्कृति जिसकी हैं लहर-लहर
ऐसा प्रवाह ये उमगाते।
ये महातिमिर का उर विदीर्णकर
नव प्रकाश-वैभव लाते।
तारकचय का ये रजत चूर्ण
नभ के अंचल में छितराते।
ये जीवन-डग बढ़ते जाते।

प्रस्तरयुग इनका एक चरण,
बर्बरयुग इनकी शिल्पकला।

इनकी लीला का लास प्रलय
कृति महासमर इनकी सफला।
ये जीवन-डग व्यापक दुर्धर,
अविराम, अबाध, अरुद्ध, अपर—
सृष्टा ये अग जग के सुन्दर।
इनके पद चिह्नों से चिह्नित
अम्बर-सागर सब इठलाते।
ये इच्छा की जलती ज्वाला
जड़ में चेतन करते जाते।
ये जीवन-डग बढ़ते जाते।



अछूत

ओ अछूत ! ओ पंक्ति बहिष्कृत !
छू दे भारत के जड प्राण।
सदियो की अवरुद्ध प्रगति मे
ज्वार उठे, आये तूफान।

नर नारायण का प्रतीक तू
जीवन का अभिशाप अरे !
तू छू सकता क्यो नहीं उसे
जो अनाचार अविचार करे ?

तू युग युग से पिसता रिसता
हो गया रिक्त, साधन विहीन।
तेरे शोषण से पीन पुष्ट
ये चिर उद्धत दर्पित कुलीन।

ओ श्यामवर्ण ! पीडित, वंचित
ओ सतत क्षुधातुर ! ओ विवस्त्र !
तेरे शरीर पर मांस नही
तेरे हाथो मे नहीं अस्त्र।

तू ज्ञान सभ्यता से वंचित
तू जीवन्मृत, चिर अंधकार।
तू एक बार बढ़ कर हाथों
से खोल रूढ़ि के रुद्ध द्वार।

कोने कोने में नव प्रकाश
भर दे जीवन का नव प्रभात।
इस दलित गलित मानवता की
बीते काली कर्कशा रात।



आर्ष सस्कृति

उर्वरा आर्य सस्कृति भूपर
गगा - यमुना के स्रोत सजल।

ऋषियो के आश्रम, यज्ञ-याग,
तत्वालोचन, चिन्तन, विराग,
वह आत्मशोध का दायभाग,

पीडित मानवता को विराम
दुस्तर जीवन का पथ सरल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल।

अत प्रेक्षण कब दृष्टिरोध
हो, बना प्रगति में जड विरोध ?
भूले हम कब कह सुधा-बोध ?

अपना सक्रिय वैशिष्ट्य लिए
बहु पार किए हमने जल-थल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल।

तरु-छाया, विजन अरण्य-वास,
श्वापद-सहचरता, गिरि विलास,
सरि-स्रोत अटन दुर्गम निकास

पग पग डगडग गिर गिर उठ उठ
हैं सबल हुए ये पग दुर्बल।
उर्वरा आर्य संस्कृति भू पर
गंगा-यमुना के स्रोत सजल।

कन्दरा-क्रोड से अटज द्वार
कितनी दुष्करता का प्रसार!
है याद आह वह भव्य भार!

शुचि सहज स्निग्ध मुसकान लिए
इन ओठों ने ही पिया गरल।
उर्वरा आर्य संस्कृति भू पर
गंगा यमुना के स्रोत सजल।

प्रस्तर युग की आकृति विपन्न,
आखेट मात्र ही भोज्य अन्न,
मुकुलित नव मानवता प्रसन्न

रँग उठा विश्व का क्षितिज प्रान्त
निकले युगान्त के चरण चपल।
उर्वरा आर्य संस्कृति भू पर
गंगा यमुना के स्रोत सजल।

लबी यात्रा, लम्बा प्रवास,
सदियों की गणना का न त्रास
उस सृष्टि-स्रोत के आसपास—

गिर पडा जहाँ पर बीज एक
है खडा वहीं पर वृक्ष प्रबल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर,
गगा यमुना के स्रोत सजल।

स्रुत-अमृत पात्र हम स्वस्थ सजग,
रचते आये नित नवनव मग,
है सृष्टि हमारी ही यह जग,

चीनाशुक मे सब पलट दिये
पाये थे पथ में जो वल्कल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर,
गगा-यमुना के स्रोत सजल।

यह नव्य भव्य जीवन विकास,
विज्ञान ज्ञान का शुचि प्रकाश,
सभ्यता सरित का रम्य रास—

पथ दीप बना, जब प्रलय एक
लीलने खडी है विश्व सकल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल।

तम तोम घोर तर वज्रपात,
झझा झकोर, विश्रात गात,
कुछ नहीं हिमालय की बिसात,

आश्वस्त कर रहा एक हाथ
बापू का दे शाश्वत सबल।
उर्वरा आर्य सस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल।



मोहेंजो दड़ो

तुम विस्मृति के उर मे विलीन
कब से सोते थे मूक-मौन ?
इतना अनूप वैभव लेकर
मूल्याकन तक कर सका कौन ?

सदियो के तिमिरावरण तले
निश्चेष्ट और तुम रुद्धश्वास—
थे समाधिस्थ किस हेतु आह !
किस योग सिद्धि का था प्रयास?

किस युग के तुम अवशेष जीर्ण,
किस सस्कृति के अधमिटे लेख?
तुम कल्पों का इतिहास लिए
जीवित हो किसको देख-देख ?

पाषाणकाल से सिसक रहे
उर पर ले मिट्टी का प्रसार।
जन्मीं, मिट गईं सभ्यताएँ,
जनपद बसकर बन गये क्षार।

अब चिह्न शेष तक नहीं रहे
हो गये अटल साम्राज्य अस्त।
नभ चुम्बी वे प्रासाद कहाँ
दृढ दुर्ग पडे सब आज ध्वस्त।

वे आज विजेता कहाँ, उडे
पग पग जिनके थे ध्वज निशान ?
सब अर्धरात्रि का स्वप्न मात्र
रह गये आज हे महाप्राण।

'मुर्दों का डेरा', तुम्हें कौन
कहता, तुम तो हो चिर सजीव।
जीवन की शाश्वत चिनगारी पर
तव प्राणों की पडी नींव।

वसुधा ने अपना हृदय चीर
जिसको अन्तर मे दिया ठौर,
तुम युग-युग की सम्पत्ति सदा
कर सकता तुम्हें न काल कौर।

इतनी मानव अभिलाषाओं का
शिलीभूत सौंदर्य कहाँ ?
इतना सजीव, इतना सकरुण,
इतना मार्मिक सौकर्य कहाँ ?

तुम वेद पुरातन—नहीं, नहीं,
तुम तो संस्कृति के आदि काव्य।
मानव प्रयास की प्रचुर राशि
अवलोक चकित सब भूत-भाव्य।

दारुण दुर्भाग्य कौन ऐसा
जिससे तुम फिर फिर छले गये?
तुम भूतल के थे शिरोरत्न
किस गहन गर्त्त में चले गये?

हैं याद जलाप्लावन कितने
जिनमें तुम अब तक चुके डूब?
भूचालों का अनुमान नहीं
जिनकी हलचल भी रही खूब।

तो भी तुम जीवन का प्रदीप
रख सके सतत यों ज्योतिमान।
तुम धन्य, अंक में लिए रहे
युग-युग की संस्कृति का प्रमाण।

कितनी अतृप्त आत्माओं के
आलिंगन का ले रजत-पाश।
मिट्टी के इन कंकालों में
तुम गूँथ रहे हो अश्रु-हास।

अब भी आँखों में स्वप्न भरे
कानों में गुंजित अमर गीत।
प्राणों में स्पन्दित हो सुदूर
बज उठता वह मधुमय अतीत।

ये चित्र मूर्तियाँ और मृत्तिका
पात्र अचेतन वस्तु मात्र
रह जाती हैं तब नहीं, बोल
उठता है उनका गात्र-गात्र।

कहते—"हमने भी देखा है
अरमानों का ससार एक—
कटु घृणा, कलह, विश्वास, प्रेम
युत हँसी-खुशी, श्रद्धा विवेक।

इस रक्तमास की मानवता
से ही यह प्राणों का प्रदीप
था जगा कभी, पर खड़ा वहीं
था पास भाग्य का यह प्रतीप।"

ओ
ओ मान
खँडहर,
चिर जीवन

साक्षी
।
रहे

ज्योतित जिससे भवसागर तट
जिससे आलोकित पुराकाल।
फिर रँग चलो पी अमृत कुंड
से अमर घूँट हे महाव्याल!



नव सृजन

ध्वस शिला पर नई सृष्टि घन,
उभर उठे जीवन के स्पन्दन।
नयन खोलकर देखो तो कवि!
विगलित तन में कैसा यौवन?

फूल धूल में, यही विश्व क्रम,
अमर न मानव अमर परिश्रम।
कहाँ चपल ये कुसुम कलित कर
चिर सजीव हग चित्रित अनुपम।

जरा और क्या परिणत यौवन,
मृत्यु कुछ नही परिणत जीवन।
कर्म-रङ्ग पलपल नवीन औ'
प्रगतिशील यह विश्व सनातन।



मानव

संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन।

मव कला, शिल्प, साहित्य अमर
नव गीत, , नृत्य, संस्कार सुंदर
ये चिर स्वतन्त्रता के प्रतीक, संस्कृति उपवन के रुचिर सुमन।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन।

कण-कण, अणु-अणु मधु-गंध भरा
नव सृष्टि-स्रोत कल छंद भरा
पुलकित प्राणों से वसुन्धरा, सदियों से सुन्दर सर्ग-सदन।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन।

आदर्शों से अनुराग उसे
तथ्यों से सहज विराग उसे
हाथों से प्रतिमा को गढ़-गढ़, वह करता है उसका वन्दन।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन।

वह जीर्ण पुरातन का प्रेमी
वह नव्य भव्यता का नेमी
इस रूढ़ि-पंथ पंथी नर का चिर शांति क्रांति के लिए नमन।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन॥

सर्वहारा

लो, उठो सर्वहारा अशेष
प्राची नवयुग का ले विहान
है खड़ी प्रतीक्षारत अडोल,
आओ, गाओ सब क्रांति-गान।
ढह गईं, कहाँ भित्तियाँ शेष ?
रह गया एक मानव-समाज।
बंधुत्व-सूत्र में गुँथे देश
सब एक-प्राण हो रहे आज।
हम एक, हमारा एक धर्म—
पीडित मानवता का विकाश।
हम एक, हमारा एक कर्म—
सरमायादारी का विनाश।
लो, उठो सर्वहारा अशेष
हाथों में ले लो सब कुदाल।
गहरा दफना दो उठे जो न
पूँजी सञ्चय का फिर विवाद।

लो, बढ़ो सर्वहारा अशेष
उठ खड़े, हुए हैं दलित प्राण,
अब इन्हें सकेगा कौन रोक
—गोले, गोली, बरछी, कृपाण ?

चढ चलो अमीरी के पहाड
पर ऊँचे गाडो ध्वज-निशान,
ढा दो वैभव के शीर्ष शृङ्ग
कर दो सब कुछ समतल, समान।
ले चलो दराँती को सहेज,
ले चलो हथौडे को सँभाल।
निर्माण किया जिससे समस्त
हो ध्वस उसी से गढ विशाल।
लो, बढो सर्वहारा अशेष
लोथो पर मत दो आज ध्यान।
चढने दो गहरा रग लाल
कढने दो मुख से विजय-गान।

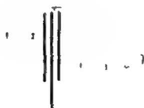
लो, चलो सर्वहारा अशेष
वे नाम शेष हो गये आज,
जो मिल मीनारो के प्रधान
हो गया खैर, उनका इलाज।
धरती ने अपना सहज भार
कैसे फेंका सिर से उतार?
कटक होते क्या धूलिसात
जब चलती है सनसन बयार?
अब देश-देश मे क्रांति-दूत
का गूंज उठा यह अमर गान—
'कोने कोने से श्रमिकवर्ग
सब सिमट चलो जल के समान।

लो, चलो सर्वहारा अशेष
तुमको रचनी है नई सृष्टि,
हो जहाँ न प्राणों का विलाप,
हो जहा न शोषण की कुदृष्टि।'

लो, सुनो सर्वहारा अशेष
तुमको करने हैं बड़े काम।
फिर नये सिरे से अर्थनीति
निर्धारण करनी है ललाम।
उत्पादन, वितरण के तमाम
साधन का होगा नया रूप।
धरती पर कृषकों का प्रभुत्व,
श्रम के होंगे बस श्रमिक भूप।
होगा न वर्ग-संघर्ष, और
सत्ता का होगा स्वयं अंत।
रहना होगा क्षण-क्षण सतर्क
जी उठे न फिर शासन दुरन्त।
लो, सुनो सर्वहारा अशेष
साहूकारी का हुआ नाश।
दाढ़ी-चोटी का जिसे गर्व
हो गया शिथिल वह धर्म पाश।

लो, मिलो सर्वहारा अशेष
हम एक ध्येय हम एक जाति।

नर कौन, कौन नारी अजान
श्रमिकों-कृषकों की एक पाँति।
हम व्यष्टि-समष्टि मिल एक राष्ट्र,
ढह गई जीर्ण प्राचीर आज।
है पृथक कुलीनों का न स्वर्ग,
अस्पृश्य न पतितों का समाज।
मिट्टी से निर्मित रूस, चीन
अमरीका, इटली, ग्रीस, फ्रांस।
बिखरा पग-पग थल-थल समान
है मानवता का हाड़-मांस।
लो, मिलो सर्वहारा अशेष
बाँहों में बाँहें डाल डाल।
अब, वर्ग वर्ण पूछता कौन
वैषम्य-दैत्य जब हत कराल।



नवयुग के मानव से

उठो, उठो तुम हे नव मानव !
नई सृष्टि निर्माण करो।
नये नये पथ रच पग पग पर
नवता सहज प्रमाण करो।

जराजीर्ण परिशीर्ण पुरातन
बाधा बंधन दूर धरो।
युग-युग सम्भव तमोराशि तज
नव प्रकाश-पथ में विचरो।

निस्तरंग जीवन-गंगा में
नूतन चेतनता भर दो।
बर्बरता, पाशवता पर ले
विजयी मानवता कर दो।

तुम हो रणस्थली के राही
जिसको घर का मोह नहीं।
ध्वंस-लेख लिखने वालो !
खोदो अतीत की कब्र यहीं।

यही क्रांति का शिलान्यास कर
नव संस्कृति-प्रासाद रचो।
भव-मानव में मुक्तिचेतना
की अपूर्व संसृति विरचो।

उठो, उठो तुम हे नवमानव!
नई दृष्टि निर्माण करो।
नवयुग के नूतन चित्रों में
नये रंग, नव प्राण भरो।

पुराकाल

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा अति दूर—दूर।
होता विराट् है जहाँ क्षुद्र
औ' तथ्य जहाँ बनता सरूर।
वह पुराकाल था अन्धकाल,
वह आदि धर्म था क्रूर कर्म।
आखेट और बलिदान-युग्म
उसकी रक्षा के रहे वर्म।
कंकड़, पत्थर, रवि, चन्द्र, मेघ,
सरि, सर, तृण, तरु, वीरुध, समीर
किस किस की पूजा नहीं स्वार्थ-
प्रेरित मानव ने हो अधीर।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि चला खींचने एक चित्र।
वह पुराकाल था अजब काल
उसका सब कुछ ही था विचित्र।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा आँखें पसार
उस शिलाखण्ड की ओट लिए
करता पीछे से कौन वार?

वह निहत आह ! होगया शत्रु
जो था निरीह, जो था निरस्त्र !
अब जेता को अधिकार प्राप्त
वह खाल खींच ले, करे, वस्त्र।
कैसा सुन्दर यह पुण्य कार्य
फिर साथ शास्त्र-सम्मत विधान !
गाये दुनियाँ हो मस्त क्यों न
अपने योद्धा के सुयश-गान ?
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि मुग्ध दृष्टि से रहा चाह,
वह पुराकाल था अन्धकाल,
था तत्वज्ञान उसमें अथाह !

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा वह यज्ञकुंड
अपनी भीषणता से ललाम
जो दग्ध हुआ गज रुंड-मुंड।
वह पुराकाल था क्रूरकाल
वे होतागण थे रक्तलिप्सु,
रक्खा गया उन्हें ही यज्ञकुंड
हो गये ग्रास वे मोक्ष इप्सु।
लपलप होती थीं लाल लाल
वे जिह्वा जैसे महाकाल,
साक्षी भी उनकी नहीं आज
प्रभुता-महत्व का क्या सवाल ?

कर। मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि उस निरीह पशु के समीप
आँखों से ले दो चार बिंदु
है जगा रहा कुछ स्नेह-दीप।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा अति दूर-दूर,
वह फराऊन का मिस्र देश
सदियाँ जहाँ की दिव्य हूर।
वह पुराकाल था निशाकाल
जब चार हाथ की वहाँ कब्र
हो पाती थी क्यों नहीं आह!
मुर्दे के जी के लिए सब्र?
ढो ढो पत्थर लाखों गुलाम
कर गये पिरामिड से महान
निर्माण, जहाँ सोते नरेन्द्र
अरमानों का तनकर वितान।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा, पलकें पसार,
लिख गये सतत जो विजय-लेख
उनके पल्ले में पड़ी हार।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देश-काल के आरपार—

लख रहा प्रथित 'यूनान राज्य
बहती जिसकी असि-प्रखर-धार।
वह 'पुराकाल' था क्रूर काल
जब हुआ ट्राय का था विनाश,
दासियाँ राजपुत्रियाँ, आह
बन 'कर' आई थीं बद्ध-पाश
पानी भरने को ग्राम-ग्राम
वे कली जुही की, रम्य रूप
जिनकी आँखों के मधुर प्यार
को, तरसा करते विश्व-भूप।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि आई, दृष्टि लख रहा मौन,
यह आँसू की लड़ियाँ बखेर
है खड़ी माधवी-लता कौन?

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि रोम-राज्य के आसपास
कर रहा संकलित घूम घूम
सदियों के बिखरे अश्रु-हास।
वह पुराकाल था नग्नकाल
उत्कर्ष पड़ोसी का न आह!
सह सका रोम-वैभव दुरन्त
होगया हन्त, कार्थेज तबाह!
हैं, अमर किन्तु वे वामवृन्द
बट लिए रज्जु ले केशपाश,

कर। मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि उस निरीह पशु के समीप
आँखों से ले दो चार बिंदु
है जगा रहा कुछ स्नेह-दीप।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा अति दूर-दूर,
वह फराउन का मिस्र देश
यादियाँ जहाँ की दिव्य हूर।
वह पुराकाल था निशाकाल
जब चार हाथ की वहाँ कब्र
हो पाती थी क्यों नहीं आह!
मुर्दे के जी के लिए सब्र?
ढो ढो पत्थर लाखों गुलाम
कर गये पिरामिड से महान
निर्माण, जहाँ सोते नरेन्द्र
अरमानों का तनकर वितान।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा पलकें पसार,
लिख गये सतत जो विजय-लेख
उनके पल्ले में पड़ी हार।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देश-काल के आरपार—

धक धक जलतीं हैं जहाँ फूल-
सी कोमल किंशुक नवल वाल।
वह पुराकाल था अधकाल
नारियाँ लूट का जहाँ माल
वन कर लुटी जातीं, मनुष्य
होते थे वकरे से हलाल।
वाजारों में विकते गुलाम
घर मे लौंडी फिरतीं अनेक,
ढा कहर जहाँ देता तुरन्त
आका की भ्रू का भग एक।
फर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा हूँ सजल दृष्टि,
जिन पलको से झरते अजस्र
मोती, वे करते अश्रु वृष्टि।

फर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा पलकें पसार,
अकबर-सलीम का स्वर्णकाल
औ' शाहजहाँ का पृथुल प्यार।
वह पुराकाल था अधकाल
औरंगजेब सम्राट्, और
दाराशिकोह का छिन्न शीश
भूलुठित फिरता ठौर-ठौर।
दाढी-चोटी में जहाँ धर्म
का निर्णय करती थीं कृपाण,

युग युग गायेंगे कीर्तिगान
उनकी महिमा में अनायास।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख देख हो रहा स्तब्ध,
बुद्बुद्-सा कैसा हुआ अस्त
साम्राज्य कहाँ वह सहज-लब्ध?

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा अधखिले फूल
सहते हैं पैरों के प्रहार,
सहते हैं काँटों के त्रिशूल।
वह पुराकाल था तमस काल
बलवान वहाँ थे देवदूत।
निर्बल निरीह, कंपित-विपन्न
आतंक-राज था घनीभूत।
डाकू पाते थे जहाँ माल
हत्यारों के सिर रहा छत्र।
चंगेज सिकन्दर की सुकीर्ति
कह रहे खड्ग के रक्तपत्र।
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि बाँच रहा है पुराकाल,
जो जीर्ण लेख हो गया स्वयं
खा रहा जिसे कृमि-कीट-जाल।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि हेर रहा वह चिता ज्वाल,

धक धक जलती हैं जहाँ फूल-
सी कोमल किंशुक नवल बाल।
वह पुराकाल था अधकाल
नारियाँ लूट का जहाँ माल
बन कर लुटी जाती, मनुष्य
होते थे बकरे से हलाल।
बाजारों में बिकते गुलाम
घर में लौंडी फिरती अनेक,
ढा कहर जहाँ देता तुरन्त
आका की भ्रू का भंग एक।
कर मुक्त शताब्दी के गवाक्ष
कवि देख रहा है सजल दृष्टि,
जिन पलकों से झरते अजस्र
मोती, वे करते अश्रु वृष्टि!

कर मुक्त शताब्दी के गवाक्ष
कवि देख रहा पलकें पसार,
अकबर-सलीम का स्वर्णकाल
औ' शाहजहाँ का पृथुल प्यार।
वह पुराकाल था अधकाल
औरंगजेब सम्राट्, और
दाराशिकोह का छिन्न शीश
भूलुंठित फिरता ठौर-ठौर।
दाढ़ी चोटी में जहाँ धर्म
का निर्णय करती थीं कृपाण,

इस्लाम , छोड ,था सभी कुफ्र
सस्ते काफिर के बिके प्राण !
कर मुक्त शताब्दो के गवाक्ष
कवि देख रहा वे रक्तपात ;
साक्षी बन कर सब रहे बोल
जो तथ्य आज तक थे न ज्ञात।

शूद्र

वर्णाश्रम की रीढ शूद्रजन
अति श्याम वर्ण, सुन्दर शरीर,
सुगठित, बलिष्ठ भुजदण्ड, धीर—
मन स्वीय कर्म रत
अविरत,
स्रष्टा समाज, संस्कृति, जीवन।
इनका कृतज्ञ जगका कण कण।

ये कर्मकार, ये शिल्प-स्वस्थ मन,
कर कर ये चिर तम-ग्रास ग्रास
भरते युग-युग जग-जग प्रकाश
तन होम, रोम प्रति
संसृति,
रच पुर-पट्टन प्रासाद ग्राम
रच शिल्प कल्प आलेख-धाम
गृह राजमार्ग गढ तोरण—
सभ्यता शिखर वर वर्द्धन।
ये वर्णाश्रम के प्राण शूद्र जन।

नीच नहीं ये शूद्र, महाजन।
ये समाज संस्कृति निर्माता
कुत्सित को देते स्वरूप धर,
लघु को गौरव सुन्दर,
पारसमणि इनके युग कर
संस्पर्श मात्र से हेम-हीर होते कुधातु औ' पत्थर।
ये समाज की मांसपेशियाँ, ये दृढ़ वचन।
वर्णाश्रम की धुरी शूद्रजन।

ये वर्षातप, वात शीत
सहते सस्मित, अविरत अभीत
ये अथक कार्यरत
पशुवत्
निर्माणलग्न युग-युग से,
ताकते न नभ की ओर, नमित सिर
लखते निश्चल भू को।
मन आकांक्षा-मुक्त, रिक्त स्वप्नों से लोचन—
ये समाज का शकट खींचते, सहते बंधन।
वर्णाश्रम के प्राण शूद्रजन।

शत वसंत, शत ग्रीष्म, शरद् शत,
शत शत बार हुए अतीत गत,
रहे किन्तु ये अडिग स्थाणुवत्
स्खलित

दलित

इनके न अचल मन

भार—निरंतर भार ढो रहे जब तक जीवन।

नंगे भूखे किन्तु न इनके उर में निष्क्रण

ये समाज की नींव शूद्रजन।

जीवन्मृत ये कलाकार

वैभव विलास से निर्विकार,

अविकल्प ध्येय, अविकल्प दृष्टि

आदर्श एक ले लग्न-सृष्टि—

ये मानवता के उन्नायक,

ये कुशल विश्वकर्मा जीवन सस्कारो से प्रेरित

ये स्वय नीड मे बस परहित रचते बहु भव्य दिव्य जनपद।

करते पद पद

नित श्रम से वसुधा को पावन।

नीच नहीं ये शूद्र, महाजन।

अनगढ प्रस्तरखडो को गढ

ये नव नव प्रतिमाएँ सुन्दर

रख देते हैं सन्मुख सजीव-सी, स्वय बोल उठने को आतुर,

मदिर मे स्थापित कर जिनको सतत पूजते हैं सवर्णजन।

किन्तु न जाती दृष्टि कभी इनके जीवन पर,

महिमा का यह भवन खड़ा है जिनके ऊपर।

युग युग से दे रहे अर्घ्य प्राणो का पावन,

पतित नहीं ये शूद्र, महाजन।

खड़े अमित जो कुतुब, ताज, मंदिर, गिरजाघर,
खड़े पिरामिड अपर महीधर,
दर्प-दृप्त जो वंश-वंश का लेकर गौरव
खड़े लेखते इन्हें न तृणवत्
उन सबका कौलीन्य इन्हीं के रक्तमांस से पोषित।
इनकी पूजा करो, यही हैं पूज्य सनातन
त्याज्य नहीं ये शूद्र, महाजन।

यही हली, कृषि कर्म यही कर,
उपजाते बहु अन्न, धान्य, धन।
यही कातते सूत, यही बुनते पाटाम्बर,
जनसमाज के यही क्षुधा-लज्जा-संरक्षक।
द्वापर, त्रेता, कृतयुग से वसुधा का मंथन
करते ये अविराम
सतत सह-सह उत्पीड़न।
घृण्य नहीं, ये, धन्य, शूद्रजन।
इनकी पूजा करो, यही हैं पूज्य सनातन।

निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख के ये वाहन
जर्जर तन मन प्राण, आज ये दीन, अकिंचन।
इन्हें उठाओ—इन्हें नरक से लाओ बाहर
भाग भोग कर जिसे, स्वर्ग-सुख बाँटा घर-घर।
हो सकते क्या उऋण इन्हें हम शिरोधार्य कर?
यही आज का धर्म, यही शुभ कर्म यजन,
इनकी पूजा करो शूद्र ये पूज्य सनातन।

ध्वस्त संस्कृति पर

यह ग्राम वही, यह ठाम वही,
जीवन शिल्पी का धाम वही।
अंकित हरियाली खेत यहाँ,
गंगा-यमुना की रेत यहाँ।
काँटों की काली बाढ़ यहाँ,
सावन घन घटा प्रगाढ़ यहाँ।
अंबरचुंबी बरगद पीपल,
ये आम नीम के दल के दल।
ये इमली और बबूल बड़े,
नरकुल के झुरमुट गुँथे खड़े,
बुलबुल गाती, गाते मयूर,
कढ़ बया जोज से, रहे घूर।

यह परिचित चिरपरिचित प्रदेश!
मेरे बचपन का उपनिवेश।
यौवन का क्रीड़ा धाम सुभग,
प्राणों का पुण्य विराम सुभग।
यह ताल वही जो भरा नीर,
यह विटप वही जो खड़ा तीर।
उस ओर जलाशय के सुन्दर
सारस की जोड़ी गोते पर
जा रही उड़ी सरसर फरफर।
वह कौन पड़ा सिर नीचा कर?

देखो, देखो, कुछ कहो कहो!
क्या नहीं वही यह मूर्ति अहो!
मन्दिर-प्रांगण में तीर्थ-सलिल—
से पूजित होती थी अविरल।
वह धूलिसात, वह भू-लुंठित,
हतचेत ज्ञान-गरिमा कुंठित।
कंचन प्रतिमा, वह देव-मूर्ति,
नर-नारी की विश्वास पूर्ति।
चिर अर्चित, चर्चित, अर्घ्यस्नात।
संसृति हित ले वरदान प्रात
क्यों पड़ी हुई आहत अवनत
विकलांग और वह क्षतविक्षत?

वह कहाँ गया पावन मंदिर
युग-युग की जिसमें श्रद्धा थिर?
वह कहाँ गई चूड़ा उन्नत?
वे स्वर्ण कलश जो शुभ्र सतत?
थी मस्जिद भी तो यहीं एक,
सादगी रूप, प्रतिमा विवेक—
श्रद्धा रहती थी जहाँ लग्न,
वह पाक पवित्र प्रशान्ति मग्न।
ऋषियों की सी ऋजुता संचित
वह श्वेत श्मश्रु मुल्ला परिचित!
अब नहीं दीखते मुझे यहाँ,
वे जड़ चेतन खोगये कहाँ?

वे कहाँ गये मोहन, मुनीर ?
वे कहाँ गये रहमत, बशीर ?
वे कहाँ गये मुरली, चदन ?
वे कहाँ गये जीवन, नदन ?
यह तो भारत का ग्राम नही ,
हिन्दू मुस्लिम का नाम नही !

पीते थे बैठ यहीं हुक्का ,
बुड्ढे हकीम लिखते रुक्का
कुछ सोच सोच, कुछ रुक रुककर
फिर देख देख, फिर झुक झुककर ।
बेगम, खानम, रानी, बेटी
चलती, फिरती सोती, रोटी
वे स्वप्न आज हो गई कहाँ ?
हँस खेल खेल खो गई कहाँ ?
पचाग खोल, गिन मीन-मेष ।
झट देख रेख कर हस्तरेख ।
करते जो भूत भविष्य कथन ।
थे यहीं ज्योतिषी पचानन ।
थी शिशुशाला भी यहीं खडी ।
घटे बजते थे घडी-घडी ।
आँखो के आगे अमर वही ।
जो चिह्न शेष तक नहीं रही ।
यह टूट गया कच्चा मकान,
यह भग्न पडी पक्की दुकान

जल गई झोपड़ो की कतार
उड रही जहाँ पर शुष्क क्षार ।

बसते किसान, धोबी, कुम्हार,
ठाकुर, बाम्हन, मोदी, लुहार,
बढई, नाई, काछी, कहार,
कायथ, अहीर, बुनियाँ, चमार
क्या आज किसी के चिह्न शेष ?
जो चलते फिरते थे हमेश,
जो रहते बसते यहाँ सतत,
हो गये काल के साथ विगत !
वे कहाँ गये, वे कहाँ गये ?
वे परिचित तन, मन नये नये !
वे नर नारी, वे बाल-वृद्ध !
वे स्नेह स्निग्ध, वे मोह बद्ध !
अपने अपने की मधुर चाह,
तेरे मेरे की क्रूर डाह !
सब जीते-जी, की आह-वाह
मिट गई, न बाकी वह प्रवाह !
घर आँगन कब्रिस्तान बने,
मंदिर मस्जिद वीरान बने।
सब हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ
सो गये यहीं कर अमर गाथ !

ये शत्रु-करों के अमिट लेख
रह गये, न कोई बची रेख

अपनी संस्कृति की अमल धवल।
अपने जीवन की सौम्य सरल
झाँकी वसुधा में स्वर्ग एक—
जागृत श्रद्धा, जीवित विवेक!
हवि महासमर की बनी, बना
यह यज्ञकुण्ड भारत अपना!

आधारशिला हो यही सृष्टि,
बरसे स्वतन्त्रता अमर वृष्टि।
सब एक तान, सब एक प्राण,
झंकृत हो भैरव एक गान।
महनीय बने, सहनीय बने,
दयनीय दशा वहनीय बने।
चिर मतवालो से बर्से ग्राम,
थल थल, पग पग पर, ठाम-ठाम।
अंधड आयें, आयें उफान,
झंझा गायें भूकंप गान।
फिर नव नव रूप धरें श्मशान।
संस्कृति अणु अणु हो रूपवान।
क्रम यही अमर सात्वना लिए,
आँसू पी मोती दान दिये।
रज से निर्मित वैभव महान
कण कण से हिमगिरि का उठान!
मूर्च्छा से चेतनता विकाश,
तम से प्रभात का अट्टहास।

घर घर जीवन के अमर चरण
करदें ज्योतित अब्दों के क्षण।
यह महानाश, यह खंड प्रलय,
हो उठा आज तो मंगलमय।



इतिहास

जग को यह इतिहास
चाहिए नहीं, कि जिसमें सम्राटों के गीत।
दस्युओं की गाथा अविनीत,
न जन-जनपद के अश्रु पुनीत।
विजय के गीत,
समर उद्घोष,
प्रचण्डाक्रोश,
जिगीषा, हिंसा का व्यापार!

यह विपाक इतिहास!
उठा दी घर-घर में प्राचीर।
जन जन से औ' जाति जाति से
वंश वंश से छिन्न।
देश देश से, राष्ट्र राष्ट्र से,
हृदय हृदय से भिन्न।
खिन्न कण कण,
अणु अणु उच्छिन्न।
न समता लेश,
प्रेम निश्शेष

द्वेष ही द्वेष,
क्लेश ही क्लेश,
गूँजता आर्तनाद सविशेष।
बुद्धि-विद्या का असत् प्रचार।

आज यह अतिरंजित इतिहास।
व्यर्थ के गौरवगान,
दर्प से एक महान्,
अपर-मुख म्लान,
किसी को आर्य, अनार्य
किसी को यवन
किसी को हूण, यहूदी, द्रविड
किसी को शीश
किसी को चरण
मनुज को मनुज न कहना, आह!

शब्दछल यह इतिहास।
न इसमें सत्य, न तथ्य;
स्वार्थ ही स्वार्थ
शक्तिबल का जयघोष
सबल का दुंदुभिनाद।
अवशता पर आतंक कठोर
वीरपूजा का यह अध्याय
नित्य कुत्सा परिपूर्ण
सुरक्षित अत्याचार।

नवोद्भूत इतिहास !
पुरातन मधुघट में कटु तिक्त ,
हलाहल कालकूट का पेय
पी रहा भव जीवन दिन-रात ।
विरल दुर्बल दुख दीन
लिए उर में पशु लिप्सा भार
जी रहा नर-कंकाल !

दन्तकथा इतिहास !
चिर तमच्छन्न, अज्ञान अघ
यह गाडरदल नर
करता है अनुसरण अकुंठित
चंगेजो तैमूरों की जय घोल ,
सीजरो का गुणगान ,
गोरियो का आख्यान ,
खिलजियो, मुगलो का अभियान
आज इसका पुनीत सधान !

रक्तरंजित इतिहास !
धर्म की निशित कृपाण ,
न उर में दया, क्षमा, वरदान
शीर्ण जर्जर तन प्राण
लोक जीवन, समाज हतज्ञान
विभाजित रक्त-मास, जन-स्वार्थ
कूटनीतिक षडयंत्र महान ।

जाति, राष्ट्र, कुल वर्ग, वर्ण
सब कल्पित नाम !

यह अद्भुत इतिहास !
छुएगा इसको कौन अजान ?
सिकन्दर का यह करता मान ,
पराजित दारा का अपमान
जबकि दोनो ही व्याघ्र समान
कर गये लाखों का बलिदान।
खून से रँगे हुए हैं पृष्ठ ,
खड्ग से लिखा हुआ दास्तान !

फाड फेंको इतिहास !
हमें तुमसे, तुमको हमसे करता जो दूर
दे रहा वर्गवाद को जन्म ,
घुटी के साथ ,
न जिसके पास मिलन-सदेश ,
न जिसके साथ प्रेम-सद्भाव
फूट ही जिसका मोहनमत्र,
विभाजन प्राण !
यह राष्ट्र-जाति उत्थान
आज किसका कर्तृत्व ?
क्या लगे नहीं इसमें अर्बुद कर प्राण ?
मिट नहीं गये क्या कीड़ों से पिसकर ,
घिसकर मानव-समूह अम्लान ?

आह भी जिनके मुख से कढी नहीं
किन्तु कहाँ वे आज, कहाँ उनके स्मारक ?
ये ताज, कुतुब, ये दुर्ग, भवन, आलेख
कहो किसके आँसू से निर्मित ?

कहाँ है वह इतिहास ?
भुला कर शाहजहाँ का तख्त
छोड़कर जहाँगीर का पानपात्र
युग युग के लोकजीवन का अश्रु-हास
चित्रित करदे यथार्थ।
श्रेणी-वर्ग हो न जहाँ
वर्ण-राष्ट्र हो न जहाँ
जनता जनार्दन हो,
कृषक, श्रमिक, सत कारीगर हो समस्त
एक ध्येय, एक ध्यान,
एक ज्ञेय, एक ज्ञान।
पक्षपात हो न रंच
एक वाणी, एक कंठ,
एक तानपूरे पर,
गाये आर्य गीत जन-जन के।
होगा वही इतिहास,
सत्य शिव सुन्दरम्—होगा वही इतिहास।



अंतेवासी

ओ ज्ञान-मानसर के मराल!
ऋषि आश्रम के अधखिले फूल!
पा रोम रोम जिसका पुनीत
आचार्यदेव की चरण धूल।
ओ सत्यकाम जाबाल! आज
वह कहाँ यज्ञ का गंध धूम,
वेदी पर तनता था वितान
उन्मत्त मेघ सा घूम घूम?
वे सरस्वती के उभय कूल
बहते थे जीवन का प्रवाह,
पर ब्रह्मज्ञान का विमल स्रोत
भरता ही तो आया अथाह।
तुमने समिधा चुनली, अवश्य
संध्या से पहले महाभाग!
पर यज्ञपुरुष कब हुआ तुष्ट
लोलुप है अब भी रक्त राग।

तुम आदि पुजारी एक बार
तुमने अरण्य को प्राण दान—
देकर, जीवन को स्वर्ग तुल्य
सा उठा दिया महिमा-महान!

लेकर जिज्ञासा के प्रसून
साथ प्रभात तुम खड़े मौन,
होठों पर मन्त्रोच्चार स्तब्ध
प्राणों में उत्सुक प्रणति कौन ?
कर गुरुकुल में तुमने प्रवेश
संयम का जो दृढ़ शिलान्यास
कर दिया,—विश्व का रोम रोम
क्या भूल सकेगा अनायास ?
हैं हरे-भरे अश्वत्थ, और
वट लिए खड़े हैं जटा भार,
आँखों में तिरता है अतीत
साँसों में संचित विगत ज्वार।

ओ मननशील, कैसा अपूर्व
गंगातट का वह प्रथम प्रात!
प्राची के रवि के साथ साथ
तुम प्राप्त हुए थे शुभ्र गात।
ऋजु रूप, सौम्य शोभन स्वरूप
साधनाकुंज के पारिजात,
वरदान उषा के से अनूप
होगया धन्य द्रुम पात पात।
वह मुंज-मेखला से निबद्ध
कटि-देश, विश्व का लिए त्राण
रत सत्य शोध में सतत लीन
हो उठा आप ही तो महान।

किरणों में आभा का प्रसार
पुलिनों में पैरों के पुनीत
हैं लिखे लेख, झंकृत प्रदेश
गा गाकर तव उद्गीथ-गीत।

तुम कुशासीन, जागृत-समाधि
ऋषि याज्ञवल्क्य के आसपास
ले कभी तीर्थजल, कभी पुष्प
पहुँचे रहते हो अनायास।
सामश्रवादि, क्या तुम्हें जीर्ण
कर सकता है यह जीर्ण काल?
सदियों के फलकों पर विशाल
जाज्वल्यमान वह भव्य भाल।
वे अग्निहोत्र के उभय पार्श्व
ले जहाँ स्रुवा तुम समासीन।
भरते हैं जीवन में प्रकाश
उर-ज्योत्स्ना में आशा नवीन।
श्रद्धा की प्रतिमा सहज सौम्य,
आचार-साधना के प्रतीक।
तुमसे सब विद्यापीठ धन्य
तुम ब्रह्मचर्य की स्वर्ण-लीक।

तुम युग युग के पथ के प्रदीप-
ओ युवा मनस्वी, विश्वरूप!

तुम सृष्टि-बीज को रहे शाध
सह सह कर छाया और धूप।
तुम भरद्वाज, गौतम, अगस्त्य
औ' कपिल-कण्व के कृपा-पात्र।
तुमसे सतयुग का उच्च भाल
तुमसे द्वापर का पुण्य गात्र।
तुम तक्षशिला के कीर्ति-चिह्न,
तुम नालन्दा के ज्ञान-कोष।
तुम से ही तो काशी प्रयाग
युग-युग से पाते रहे तोष।
तुम मृग-किशोर के साथ-साथ
रहकर भी चिन्तन में प्रवीण।
ओ प्रकृति-पुजारी, क्यों अरण्य
की छायावत् तुम आज क्षीण ?



विक्रम महान

विक्रम, तुम थे सम्राट्—राष्ट्र
की आत्मा के सम्राट्, सत्य।
कहता है सदियों का प्रवाह
कहते हैं निखरे हुए कृत्य।
हो जायें यदि इतिहास मौन
मिट जायें यदि सब शिलालेख,
तो भी क्या धूमिल रक्तवर्ण
हो सकती है वह वज्ररेख?
खाता है खाये कालवश
है अमर राष्ट्र का यश स्तम्भ
उसके चरणों में लोट लोट
मिल गये धूलि में दस्यु-दम्भ।
डोली धरणी, डोले पहाड़,
उन्मथित सिंधु का अन्तराल,
तो भी तुम अविचल रहे किन्तु
साक्षी है विस्तृत पुराकाल।

साक्षी हैं जन, जनपद, जहान,
साक्षी युगयुग का कीर्तिगान।
किस पुण्य कृत्य का भव्य रूप
बन उदित हुआ [illegible]

विक्रम महान है एक भाव
प्रेरणा एक विक्रम महान।
विक्रम महान जड को सजीव
करने वाला ध्रुव सत्य ध्यान।
है एक महत् कल्पना शीर्ष
जिसका छूता है नील व्योम।
विक्रम महान के उभय रूप
हैं प्रकट विश्व में अर्क-सोम।
विक्रम महान सचमुच विराट्
तुम राष्ट्र-देवता के प्रतीक।
तुमको पाकर हो गई धन्य
संस्कृति-सरिता की पुण्य-लीक।

हैं बीत गये दो सहस्राब्द
पर मृत्यु हीन जीवन विलास।
चिर-नव वसंत के साथ साथ
लेकर आता है नवोच्छ्वास।
उत्कीर्ण पुरातन मानचित्र
उन चरणों से आसिंधु, वीर।
जिनकी आहट पा शत्रु-सैन्य
विचलित हो भहराती अधीर।
घोड़ों की टापों के निशान
लेकर विभोर हैं शिलाखण्ड,
पग पग मग-मग सर्वत्र गूँज
दिग्विजय-गीत उठते प्रचण्ड।

विंध्याचल, हिन्दूकुश, हिमाद्रि
विक्रम-गाथा के सुकवि मूक।
मरु, गुर्जर, मालव, महाराष्ट्र
सब उसी काव्य से रहे कूक।



नालन्दा

ओ नालन्दा, तूने ज्वलन्त
रक्खा भारत का ज्ञान-दीप।
जीवन-दर्शन की हुई शोध
तेरे ही चरणों के समीप।
तेरी मिट्टी का एक एक
कण आर्ष-दृष्टि से ओत-प्रोत।
तेरे प्राणों से बहा फूट
विद्या का पावन पुण्य स्रोत।
तू प्रक्षालित कर लोक-प्राण
होगया तीर्थजल महाभाग।
हो गये अमर कितने प्रवाद
पा तेरी वाणी का पराग।
तू धन्य, छिन्न शृखला-जाल
को एक बार फिर से सहेज।
भारत के श्रेयस का अपूर्व
दे सका विश्व को अतुल तेज।

विद्या का पावन पुण्य पीठ
रह गया एक ध्वंसावशेष।
स्मृति में तेरा वैभव अपार
बिखरा है लेकर स्वप्न शेष।

ताजमहल

लिख गया प्रेम का अमर काव्य
वह शाहजहाँ था कवि महान्।
यमुना की लहरों के समीप
है उसके मृदु उर का प्रमाण।
मर्मर निर्मित है ताज—आह!
यह तत्वज्ञान कितना कठोर!
तुम नहीं देख पाते प्रवाह
लेकर बहती उर की हिलोर!
प्रेमी-नयनों की अश्रुराशि
जम गई श्वेत हिम के समान।
ये गुम्बज, ये मीनार भव्य
हैं उस उभार के ऊर्म्मि-गान।
'मानव जीवन है एक आह'—
कह रो उठते पत्थर उदास।
'है किन्तु प्रेम तो अमर सत्य'
इंगित कर गाता चन्द्रहास।
यह ताज वही चिर काल सत्य
शाश्वतता का निश्चित प्रमाण।
कवि शाहजहाँ के हृदय-बीच
पाये इसने चिर रूप प्राण।
यह ताज सेतु है जहाँ मौन
हो मिले मृत्यु-जीवन सहास।

कण कण इसका है अश्रुसिक्त
औ' रोम-रोम पावन प्रकाश।
वह शिल्पी से भी था महान
जिसके स्वप्नों का यह शरीर।
वह कहाँ प्रिया मुमताज आज
रोता प्रेमी का उर अधीर।

❀ ❀ ❀

सम्राट् नहीं सम्राट्, दीन
है वह दुर्भाग्य-समीप हाय!
कहने को जहाँपनाह किन्तु
वह बच्चों सा ही मृत उपाय।
वह प्राणप्रिया ले गया छीन
है क्रूर काल दुर्जय महान,
पीपल सा उठता हृदय काँप
उसके विलोक दृग वहिमान।
आहत प्राणों से एक चीख
आँखों से कढती अश्रुधार।
लेगया कहाँ तूफान हाय!
स्वप्नों का वह स्वर्णिम प्रसार?
मादक यौवन की एक रात
भी कहाँ बीत पाई, परन्तु
निष्ठुर अदृष्ट के क्रूर हाथ
आ तोड़ गये वह स्नेह तन्तु?
बुद्बुद्-सा जीवन का उफान
आते आते हो गया लीन।

साम्राट शून्य मे रहा खोज
वह कहाँ प्रिया की कंठ-धीन ?
अपने हाथों से उसे आज
कर दिया धरा की भेंट हाय !
जो रहती थी उर के समीप
उसको पाने का क्या उपाय ?
किससे पूछें चल पता आह !
जीवन का कैसा है रहस्य ?
यह ढुलता मदिरा के समान,
यह उड़ता होकर शुष्क हास्य !

❀ ❀ ❀

"क्या शाहजहाँ के साथ साथ
ओ प्रिया ! तुम्हारी मधुर याद
इस धरा धाम से हो विलीन
पा जायेगी मन की मुराद ?
यह, कैसे सोचेगा दिमाग,
कैसे मानेगा सद्विचार ?
हो सदा भाग्य की सहज जीत
ओ' शाहजहाँ की हार—हार !
क्या इतना अस्थिर प्रेम तत्व,
क्या यही प्रणय का सुपरिणाम ?
आलिंगन से मुमताज छीन,
ले जाय प्रिया का छीन नाम !
सोओ प्रेयसि ! तुम यहाँ मौन,
यह मर्मर की रचकर समाधि !

क्या कभी पा सकेंगी प्रवेश
इस प्रेम-कुञ्ज में आधि-व्याधि ?
इसकी छाया में सौम्य शांति
का चिर विलास ही सहज सत्य।
लो प्रणय सुधा पी चार घूँट
लेटो, श्रो जीवन की सुकृत्य !
पहरा देता है यहाँ प्रेम
है भाव सिंधु परिखा विशाल।
इस शुभ्रशिल्प के आसपास
आते डरता है महाकाल।
जीवन प्रवाह हो जाय क्षीण
धूमिल हो डूबे सृष्टि-साज।
चिर नव वसंतश्री से सदैव
यह पूर्ण रहेगा प्रथित ताज।"

❀ ❀ ❀

धर प्रेमलोक की नई सृष्टि
दे गया विश्व को शुभ्र ताज।
था शाहजहाँ प्रेमी अनन्य
कर याद दग्ध मानव-समाज।
उर में उठती है एक हूक
है रोम-रोम में तीव्र दाह।
सोकर भी दोनों पास पास
हैं कभी कभी उठते कराह।
कब्रों के भीतर मधुर टीस -
का कभी कभी आता उफान

भावी वियोग से व्यथित प्राण
लहराते चपला के समान।
मर्मर से झरते अश्रु धार
जिनसे धुलता रहता विषाद।
जीवन के क्षण क्षण का हिसाब
लेकर आती मधु-मदिर याद।
है नहीं आज तन की सम्हाल
मन का अनुशासन हुआ दूर।
मिट्टी में करके उन्हें गर्क
क्या जड़ कर पाई क्रम क्रूर?
आलिंगन को बेसब्र प्राण
हैं बार बार उठते मसोस।
चू पड़ती है दो-चार बूँद
शशि की किरणों से स्निग्ध ओस।
यह ताज एक मदिर पवित्र
है प्रणय-देवता का प्रशान्त।
उर की श्रद्धा ले यहाँ नित्य
पूजा करते प्रेमी अशांत।

विश्वभारती

विश्वभारती, तू कवीन्द्र का
एक स्वप्न अभिराम—
मूर्त्त स्वप्न, पाश्चात्य प्राच्य के
मधुर मिलन का धाम।

पुंजीभूत धूम्र, ज्वाला से
ज्वलित विश्व के प्राण,
विश्वभारती, आज तुही
आहत आत्मा का त्राण।

तेरे शांतिनिकेतन में फिर
उठा पुरातन जाग।
ऋषियों के आश्रम का पग पग
फैला पुण्य पराग।

क्षितिज-कूल विश्रांति-कुंज में,
पूर्व उषा का राग
शिलीभूत होगया, तपस्वी का
तप तेज विराग।

ज्ञान-दान की परंपरा का
उज्ज्वलतम इतिहास,
फिर से लिखने चला काल भर
प्राणों का उल्लास।

विश्वभारती के मंदिर में,
कला, ज्ञान, विज्ञान,

एक साथ फूले भारत के
उर का पा रस दान।

देश देश के ज्ञान-कुसुम की
छाई मद सुवास।
शुष्क वल्लरी में जीवन का
आया फिर मधुमास।

संस्कृतियों के इस प्रयाग में
मिले असंख्य प्रवाह
व्यस्त विश्व-मानव कृतार्थ पा
दिव्य ज्योति-तरु छाँह।

धर्म, जाति, कुल, वर्ण, राष्ट्र का
यहाँ पूर्ण अविचार।
मानवता का पूजन होता
सतत मुक्त दृग द्वार।

निखिल कला, साहित्य, शिल्प बहु
दर्शन, ज्ञान, विचार
महिमान्वित हो उठे तोड़ कर
रूढि पाश दुर्वार।

ओ कवीन्द्र की दिव्य साधना
विश्वभारती! धन्य!
इस वसुधा में कहाँ अनुपमे!
तेरी समता अन्य?
